

गंगा राम मूलचंदानी

बनाम

राजस्थान राज्य और अन्य

17 जुलाई, 2001

[जी. बी. पटनायक और बी. एन. अग्रवाल, जे. जे.]

सेवा विधि:

राजस्थान उच्च न्यायिक सेवा नियम, 1969:नियम 8(ii) और 15(ii)।

उच्च न्यायिक सेवा-पात्रता शर्तों के लिए भर्ती के लिए पात्रता व शर्तें -नियमों के अनुसार उम्मीदवारों को राज्य के उच्च न्यायालय में या उसके अधीनस्थ किसी न्यायालय में सात वर्ष तक अधिवक्ता के रूप में कार्य करने का होना चाहिए - अभ्यर्थी ने राज्य के उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय से भिन्न न्यायालय में सात वर्ष तक कार्य किया- उसे पात्र नहीं माना-वैधता- अभिनिर्धारित- जिस उद्देश्य को प्राप्त करने की मांग की गई है उसके संदर्भ में ऐसी शर्त एक बोधगम्य अंतर पर आधारित नहीं है -इसलिए, नियम 8 (ii) और 15 (ii) निरस्त कर दिया गया-हालाँकि, निर्णय का प्रभाव भविष्यवर्ती किया गया।-भारत का संविधान, 1950, अनुच्छेद 14 और 16- राजस्थान न्यायिक सेवा नियम, 1955, नियम 11.

सिद्धांत:

भविष्यवर्ती ओवररूलिंग का सिद्धांत-लागू।

प्रत्यर्थी ने राज्य उच्च न्यायिक सेवा संवर्ग के पदों को भरने के लिए आवेदन आमंत्रित किए। राजस्थान उच्च न्यायिक सेवा नियम, 1969 के नियम 8(ii) और 15(iii) में यह प्रावधान किया कि इसके लिए एक उम्मीदवार को राज्य के उच्च

न्यायालय या उसके अधीनस्थ न्यायालयों में सात वर्ष की अवधि के लिए अधिवक्ता के रूप में कार्य किया होना चाहिए। अपीलार्थी ने ऐसे न्यायालय में अधिवक्ता के रूप में कार्य किया था, जो कि राज्य के उच्च न्यायालय के अधीनस्थ नहीं था, उसका चयन समिति द्वारा चयन गया और उसे चयन सूची में रखा गया। परन्तु पूर्ण न्यायालय ने अपीलार्थी के नाम की सिफारिश नहीं की क्योंकि उसने उक्त सेवा नियमों के नियम 8(ii) और 15(ii) में निर्धारित शर्तें पूरी नहीं की थी। उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी की रिट याचिका को खारिज कर दिया। इसलिए अपीलार्थी द्वारा यह अपील की गई है।

अपीलार्थी की ओर से यह तर्क दिया गया कि नियम 8(ii) और 15(ii) संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन करते हैं इसलिए वे असंवैधानिक हैं।

प्रत्यर्थागण की ओर से यह तर्क दिया गया कि नियम 8(ii) और 15(ii) का नियमों में अंतर्निहित उद्देश्य के साथ एक युक्तियुक्त संबंध था, अर्थात् निष्पक्ष एवं प्रभावी न्यायनिर्णयन करने के लिए स्थानीय कानूनों का ज्ञान रखने वाले एवं वकालत का उचित अनुभव रखने वाले व्यक्तियों की सेवाओं को सुरक्षित करना। यह भी तर्क दिया कि यदि उक्त नियमों को असंवैधानिक माना जाता है तो उसका प्रभाव भविष्यलक्षी किया जावे।

राजस्थान न्यायिक सेवा नियम, 1955 के अधीन यह आवश्यक

किसी व्यक्ति को स्थानीय विधि एवं भाषा का ज्ञान होना चाहिए। जब अधीनस्थ न्यायिक अधिकारियों की नियुक्ति के लिए स्थानीय विधि व भाषा के ज्ञान की आवश्यकता नहीं है तो यह समझ से परे है कि उसी राज्य में किस प्रकार उच्च न्यायिक सेवा के लिए यह आवश्यक है। इस प्रकार प्रत्यर्था संख्या 2 द्वारा लिया गया आधार कि ऐसे नियम बनाने का उद्देश्य संविधान के अनुच्छेद 14 की कसौटी पर खरा उतरने के लिए स्थानीय कानूनों और क्षेत्रीय भाषा का ज्ञान आवश्यक है, तर्कहीन है।

जिस वर्गीकरण पर राजस्थान उच्च न्यायिक सेवा नियम, 1969 के नियम 8 (ii) और 15 (ii) की बनाये गये हैं, वह एक बोधगम्य अंतर पर आधारित नहीं है और इसका उस उद्देश्य के साथ कोई युक्तियुक्त संबंध नहीं है, जिसे प्राप्त करने के लिए इन्हें बनाया गया था।

2.1. वकील को किसी भी न्यायालय में वकालत करने के लिए आवश्यक विधि के प्रथम सिद्घांत से अच्छी तरह वाकिफ होना चाहिए है यहां तक कि स्थानीय कानूनों का ज्ञान भी उसी प्रथम सिद्घांत पर आधारित है और उस आवश्यकता की पूर्ति लिखित परीक्षा के प्रश्न पत्र में स्थानीय विधि को सम्मिलित किया जा सकता है, या जहां केवल साक्षात्कार लेने का प्रावधान हो वहां साक्षात्कार में स्थानीय विधि के बारे में प्रश्न पूछे जा सकते हैं और इस प्रकार अभ्यर्थी के स्थानीय विधि के ज्ञान का परीक्षण किया जा सकता है।

जे. पांडुरंगराव बनाम आंध्र प्रदेश लोक सेवा आयोग, [1963] 1 इसके बाद एस. सी. आर. 707 का अनुसरण किया गया है।

रामेश्वर दयाल बनाम। पंजाब राज्य, ए. आई. आर. (1961) एस. सी. 816 का उल्लेख किया गया है।

2.2. पुराने अभिनिर्धारित कानून में केवल इस आधार पर कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए कि एक अलग दृष्टिकोण संभव है, लेकिन यदि निर्णय स्पष्ट रूप से गलत या अनुचित है तो न्यायालय का हस्तक्षेप करना उचित होगा। उक्त नियमों के नियम 8 (ii) और 15 (ii) संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन करते हैं इसलिए इन्हें निरस्त किये जाने योग्य हैं। इसलिए, उच्च न्यायालय की खंड पीठ और पूर्ण पीठ द्वारा दिए गए निर्णय स्पष्ट रूप से गलत हैं और यदि उक्त मत का समर्थन किया जात तो राजस्थान के अलावा पूरे देश में वकालत करने वाले अधिवक्ताओं के हित के

प्रतिकूल होगा।

सी. सी. ई बनाम एम/एस. मानक मोटर उत्पाद, [1989] 2 एस. सी. सी. 303; कट्टाटी वालप्पिल पथुम्मा बनाम तालुक भूमि बोर्ड, ए. आई. आर. (1997) एस. सी. 1115; आंध्र प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम एम. गुरीवी रेड्डी, [1992] 4 एससीसी 72; इंदर मोहन लाल बनाम रमेश खन्ना, [1987] 4 एस. सी. सी. 1; थम्मा वेंकट सुब्बम्मा बनाम थम्मा रत्तम्मा, [1987] 3 एस. सी. सी. 295; सहायक जिला पंजीयक, को-ऑपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी लिमिटेड v. विक्रमभाई रतिलाल दलाल, [1987] पूरक एस. सी. सी. 27; अंबिका प्रसाद मिश्रा बनाम। उत्तर प्रदेश राज्य, [1980] 3 एस. सी. सी. 719 और महेश कुमार सहरिया बनाम। नागालैंड राज्य, [1997] 8 एस. सी. सी. 176, पर निर्भर किया गया।

दौलत राज सिंघवी बनाम राजस्थान राज्य (1970) राजस्थान एलडब्ल्यू 214 और मुनि लाल गर्ग बनाम राजस्थान राज्य, आकाशवाणी (1970) राज। 164 (एफ. बी.), रद्द किये गये।

ऑंटारियो के महान्यायवादी बनाम कनाडा टेम्पेरेंस फेडरेशन, आकाशवाणी (1946) पी. सी. 88, का संदर्भ लिया गया।

3. उच्च न्यायालय द्वारा उक्त नियमों का बरकार रखने के निर्णय को निरस्त किया गया और नियम 8 (ii) और 15 (ii) को संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के विरुद्ध होने से निरस्त कर दिया गया है। हालांकि, यह निर्णय इस निर्णय की दिनांक से पूर्व इन नियमों के अधीन की गई कोई नियुक्ति अमान्य पाई जाती है, तो उसे किसी प्रकार से प्रभावित नहीं करेगा। इसलिए इस मामले में निर्धारित विधि का प्रभाव भविष्यलक्षी घोषित किया जाता है।

आई. जी. गोलक नाथ बनाम पंजाब राज्य, [1967] 2 एससीआर 762; वामन

राव बनाम भारत संघ, [1981] 2 एस. सी. सी. 362; आत्मा प्रकाश बनाम उड़ीसा राज्य, [1991] सप 1 एस. सी. सी. 430; भारत संघ बनाम मोहम्मद. रमजान खान, [1991] 1 एस. सी. सी. 588 और प्रबंध निदेशक, ईसीआईएल, हैदराबाद बनाम बी. करुणाकर, [1993] 4 एस. सी. सी. 727 का अनुसरण किया गया है।

श्री संकरी प्रसाद सिंह देव बनाम भारत संघ, [1952] एस. सी. आर. 89 और सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य, [1965] 1 एस. सी. आर. 933 को सदृशित किया गया।

सिविल अपील क्षेत्राधिकार: 1. सिविल अपील सं. 6469/1998

राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा सिविल रिट याचिका संख्या 1704/1998 में दिनांक 2.11.1998 को पारित निर्णय के विरुद्ध

2 सिविल अपील संख्या 722/1998

राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा सिविल रिट याचिका संख्या 2179/1998 में दिनांक 2.11.1998 को पारित निर्णय के विरुद्ध

तथा

3 सिविल अपील संख्या 2411/1999

राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा सिविल रिट याचिका संख्या 1010/1998 में दिनांक 2.11.1998 को पारित निर्णय के विरुद्ध

जगदीप धनखड़, पी. पी. राव, पी. पी. मल्होत्रा, डॉ. सुशील बलवाड़ा, देविंदर सिंह, प्रवीण स्वरूप, राव रंजीत सुशील के. आर. जैन, ए. मिश्रा, ए. पी. धमीजा, सुश्री प्रतिभा जैन, अरुणेश्वर गुप्ता, (एनपी) विनीत मल्होत्रा और शैलेंद्र शर्मा पक्षकारों की और से-

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति बी. एन. अग्रवाल द्वारा दिया गया।

ये अपीलें विशेष अनुमति से राजस्थान उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा तीन अलग-अलग रिट आवेदन में 3:2 के बहुमत से रिट आवेदन खारिज करने के संबंध में सुनाये निर्णयों के विरुद्ध प्रस्तुत की गईं। जिस रिट याचिका जिसके विरुद्ध सिविल अपील संख्या 6469/1998 दायर की गई, में विज्ञापन दिनांक 21.12.1996 के अनुक्रम में उच्च न्यायालय की अनुशंसा पर प्रत्यर्थी संख्या 3 से 12 का चयन राजस्थान उच्च न्यायिक सेवा संवर्ग में दिनांक 20 अप्रैल, 1998 के आदेश द्वारा किया गया में, राजस्थान उच्च न्यायिक सेवा नियम, 1969 (जिसे आगे "नियम" से संबोधित किया गया है) के नियम 8 (ii) और 15 (ii) की वैधता को चुनौती दी है। जिसमें केवल राजस्थान उच्च न्यायालय या उसके अधिनस्थ न्यायालयों में वकालत का कार्य करने वाले अधिवक्ताओं पात्र माना गया है। इन्हें इस आधार पर चुनौती दी गई ये भारत के नागरिकों को संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 द्वारा प्रदत्त स्थापित मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करते थे। सिविल अपील संख्या 2411/1999 से संबंधित रिट याचिका में न केवल उक्त नियमों की वैधता को उपर्युक्त आधार पर चुनौती दी गई, वरन् प्रत्यर्थी के हरियाण राज्य में पूर्णकालिक वेतनभागी उप जिला महाधिवक्ता होने तथा राज्य सेवा में होने साथ ही किसी न्यायालय में वकालत नहीं करने के कारण अनुच्छेद 233 के तहत उसकी उम्मीदवारी को विचार में नहीं लेने के उच्च न्यायालय के प्रशासनिक आदेश को भी चुनौती दी गई थी। तीसरी सिविल अपील संख्या 722/1999 से संबंधित रिट याचिका चयन को उक्त नियमों के उल्लंघन में किये जाने के आधार पर चुनौती दी गई थी।

उच्च न्यायालय ने नियमों के अधीन राजस्थान उच्च न्यायिक सेवा संवर्ग के 11 पदों पर नियुक्ति के लिए दिनांक 21.12.1996 को विज्ञप्ति जारी की गई। अपील संख्या 6469/1998 के अपीलार्थी ने, नियमों यह शर्त होते हुए कि अभ्यर्थी को

राजस्थान उच्च न्यायालय या उसके किसी अधिनस्थ न्यायालय में 7 वर्ष के वकालत के अनुभव की आवश्यकता है, स्वयं काे इलाहाबाद उच्च न्यायालय के अधीन जिला न्यायालय बरेली में अधिवक्ता के रूप वकालत करने के आधार पर पात्र मानते हुए उक्त विज्ञप्ति के अनुक्रम में आवेदन किया। साक्षात्कार के बाद चयन समिति ने उसे प्रतिभाशाली मानते हुए उसका नाम चयन सूची के लिए प्रस्तावित किया। परन्तु उच्च न्यायालय के पूर्णपीठ की बैठक दिनांक 19.12.1997 में उसका नाम चयन के लिए उपयुक्त नहीं माना क्यों कि वह राजस्थान उच्च न्यायालय या उसके अधिनस्थ किसी न्यायालय में सात वर्ष की अधिवक्ता के रूप में कार्य करने का अनुभव नहीं रखता था और उसका चयन उक्त नियम के विरुद्ध था।

सिविल अपील संख्या 2411/1999 के अपीलार्थी ने उपर्युक्त विज्ञप्ति के अनुक्रम में उक्त पद के लिए आवेदन किया परन्तु उसे साक्षात्कार के लिए नहीं बुलाया गया क्यों कि वह हरियाणा राज्य की सेवा पूर्णकालिक वेतन भाेगी उप जिला अधिवक्ता था। उसने इस आधार पर आवेदन किया था कि उसके द्वारा उप जिला अधिवक्ता के रूप में किये गये कार्य की अवधि को अधिवक्ता के रूप में किये गये कार्य में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

सिविल अपील संख्या 722/1999 में अपीलार्थी राजस्थान उच्च न्यायालय के अधिनस्थ न्यायालय डीग (जिला भरतपुर) में वकालत कर रहा था। उसने भी उक्त विज्ञप्ति के अनुक्रम में आवेदन किया तथा साक्षात्कार में सम्मिलित हुआ परन्तु चयन समिति ने उसे चयन के योग्य नहीं माना। उसने अन्य अभ्यर्थी सीताराम तथा रामसिंह मीना को न्यूनतम प्राप्तांकों में चयन समिति द्वारा छूट देते हुए चयन करने को चुनौती देते हुए संपूर्ण चयन प्रक्रिया को निरस्त करने की मांग की तथा क्योंकि चयन समिति ऐसी छूट देने के लिए अधिकृत नहीं थी। इसलिए उनकी नियुक्ति नियम विरुद्ध होने से शून्य है।

समस्त रिट याचिकाओं का प्रत्यर्था संख्या 2 उच्च न्यायालय ने इस आधार पर विरोध किया कि उक्त नियम संविधान के अनुच्छेद 14 व 16 का उल्लंघन नहीं करते हैं। क्योंकि नियमों में निर्धारित राजस्थान उच्च न्यायालय या अधीनस्थ न्यायालयों में एक अधिवक्ता के रूप में सात साल की योग्यता की शर्त का नियमों में अंतर्निहित उद्देश्य के साथ एक उचित संबंध है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि सात साल का अभ्यास एक व्यक्ति को भर्ती करने में सक्षम बनाएगा। जिला और सत्र न्यायाधीश के कर्तव्यों के निर्वहन के लिए आवश्यक स्थानीय कानूनों, स्थानीय स्थितियों के साथ-साथ क्षेत्रीय भाषा का ज्ञान प्राप्त करने की मांग की गई और इस प्रकार वे वैध थे। सिविल में अपील सं. 2411/1999 में अपील का उच्च न्यायालय ने इस आधार पर विरोध किया कि अपीलार्थी ने अधिवक्ता के रूप में कार्य नहीं किया था तथा सिविल अपील संख्या 722/1999 में उच्च न्यायालय ने तर्क दिया कि किसी भी अभ्यर्थी की योग्यता कोई छूट संबंध में कोई छूट नहीं दी गई है। चयन समिति द्वारा कोई न्यूनतम प्राप्तांक निर्धारित नहीं किये गये थे।

तीनों रिट आवेदनों को पहले एक खंड पीठ के समक्ष रखा गया था। जिसने राजस्थान उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ के दौलत राज सिंघवी बनाम राजस्थान राज्य 1970 राज. लाँ विकली 214 तथा तीन सदस्यीय वृहत पीठ के निर्णय मुन्नी लाल गर्ग बनाम राजस्थान राज्य और अन्य, ए आई आर (1970) राज. 164, जिनमें उपर्युक्त नियमों की वैधता को चुनौती दी गई थी और उन्हें वैध माना गया था, की शुद्धता पर संदेह व्यक्त किया गया था। इसलिए मामला पूर्ण पीठ के पास भेजा गया। जिसने 3:2 के बहुमत से नियमों की वैधता के संबंध में दिये गये निर्णयों को यथावत रखा गया तथा अपील संख्या 6469/1998 के अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत रिट याचिका को खारिज कर दिया। जहां तक सिविल अपील संख्या 2411/1999 के अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत रिट याचिका का प्रश्न है, उच्च न्यायालय ने सर्वसम्मति से माना कि सरकार के

विधि अधिकारी के रूप में कार्यरत एक अधिवक्ता, वेतन भुगतान की शर्तों पर भी अधिवक्ता के रूप में कार्य करते हुए भी नियमों की शर्तों के अधीन उसकी वकालत समाप्त नहीं होती है परन्तु इसके लिए आवश्यक है कि वह अपने नियोक्ता की ओर से न्यायालयों में पैरवी व कार्य करें। वर्तमान मामले में यह माना गया कि अपीलार्थी हरियाणा सरकार की ओर से न्यायालयों में कार्य करने व पैरवी करने के लिए वेतन पर नियुक्त था इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा उसे मौखिक परीक्षा के लिए बलाने से इन्कार करना उचित नहीं था। उसके पश्चात की उसका आवेदन इस आधार पर खारिज कर दिया कि चयनित अभ्यर्थी कार्यभार ग्रहण कर चुके थे तथा अपीलार्थी का साक्षात्कार होना शेष था, यह भी निश्चित नहीं था कि उसका साक्षात्कार के बाद चयन होगा ही। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कि न्यायालय ने संपूर्ण चयन प्रक्रिया को रद्द नहीं किया व उसे कोई अनुतोष देने से इन्कार कर दिया। परन्तु राजस्थान उच्च न्यायिक सेवा की भविष्य की भर्तियों में ऐसे अभ्यर्थियों के आवेदनों पर विचार करने के लिए उच्च न्यायालय को प्रशासनिक दशा में निर्देश दिया। जहां तक अपील संख्या 722/1999 के अपीलार्थी की रिट याचिका का प्रश्न है, सारहीन होना मानते हुए अस्वीकार कर दिया। साथ उसके प्रति सख्त कदम उठाते हुए कहा कि अपीलार्थी वकालत कर रहा था उसने रिट याचिका को लापरवाही से पेश कर दिया न्यायिक दृष्टि से चौंकानेवाला था। न्यायालय ने रिट याचिका खारिज करते हुए अपीलार्थी पर 5000 रुपये का जर्माना अधिरोपित किया।

सिविल अपील संख्या 6469/1998 के अपीलार्थी की आर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जगदीप धनकड ने तर्क दिया कि नियमों के नियमों के नियम 8 (ii) और 15 (ii) में यह अपेक्षा की गई है कि केवल वही अधिवक्ता राजस्थान उच्च न्यायिक सेवा में सीधी भर्ती के लिए विचार किए जाने के हकदार हैं जिन्होंने राजस्थान उच्च न्यायालय या उसके अधीनस्थ न्यायालयों में कम से कम सात वर्ष की अवधि के

लिए वकालत की है। इस प्रकार भारत में राजस्थान राज्य के बाहर वकालत करने वाले अधिवक्ताओं को प्रतिबंधित कर दिया गया। यह संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के तहत गारंटीकृत नागरिक के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है इसलिए अवैध है। जो कि बौद्धगम्य अंतर पर आधारित नहीं होने के कारण इस तरह का वर्गीकरण युक्तयुक्त नहीं है। जैसा कि इस न्यायालय की संवैधानिक पीठ द्वारा " पांडुरंगराव बनाम आंध्रप्रदेश लोक सेवा आयोग (1963)1 एस.सी.आर.707" में अभिनिर्धारित किया गया। सिविल अपील संख्या 2411/1999 में अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वकील ने तर्क दिया गया कि इस आधार पर उनकी उम्मीदवारी को हरियाणा राज्य की सेवा में उप जिला अटॉर्नी के वेतनभोगी पद पर आसीन होने के आधार पर की अस्वीकृत करना उचित नहीं था। उच्च न्यायालय को उसके पक्ष में अनुतोष देने से इनकार नहीं करना चाहिए था। सिविल अपील सं. 722/1999 में अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वकील ने तर्क दिया कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थी पर सख्त निर्देश पारित करना व भारी जुर्माना अधिरोपित करने का अधिनिर्णय उचित नहीं था। दूसरी तरफ राजस्थान उच्च न्यायालय (प्रत्यर्थी संख्या 2) की ओर से श्री पी. पी. राव ने यह तर्क दिया कि उपर्युक्त नियम वैध कानून का भाग हैं जो राजस्थान के राज्यपाल द्वारा उच्च न्यायालय के परामर्श से बनाए गए हैं जिनका वर्गीकरण इन नियमों के अंतर्निहित उद्देश्य के साथ एक उचित संबंध है इसलिए इन्हें संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन नहीं कहा जा सकता है। अर्थात् स्थानीय कानूनों के साथ-साथ क्षेत्रीय कानूनों की जानकारी रखने वाले व्यक्तियों की सेवाओं को सुरक्षित करना। निष्पक्ष और कुशल न्याय निर्णयन को सुरक्षित करने की दृष्टि से बार में स्थानीय भाषा और पर्याप्त अनुभव को ध्यान में रखते हुए वर्ष 1969 में नियम बनाये गये हैं। संविधान पीठ द्वारा जे. पांडुरंगराव (उपर्युक्त) के मामले में विधि स्थापित किये जाने के छह साल बाद न्यायालय द्वारा स्पष्ट

अनुमोदित मापदण्ड को शामिल करते हुए नियमों को संवैधानिक रूप से अमान्य नहीं माना जा सकता है। यह आगे यह भी तर्क दिया गया है उच्च न्यायालय द्वारा बार-बार इन नियमों की वैधता को अनुमोदित किया गया है और समस्त भर्तिया व नियुक्तियाँ उसके अनुसार की गई हैं, इसलिए उच्च न्यायालयों के कई निर्णयों द्वारा स्थापित विधि को अस्थिर करना समीचीन नहीं होगा। श्री राव ने वैकल्पिक रूप से तर्क दिया कि यदि यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि उपर्युक्त नियम असंवैधानिक हैं, तो निर्णय का प्रभाव भविष्यलक्षी किया जाना चाहिए, क्योंकि जब नियमों के लागू रहने के दौरान 32 वर्षों की इस लंबी अवधि में नियमों के अनुसार कई चयन किए गए हैं और उच्च न्यायालय द्वारा विवादित निर्णय पारित होने के बाद भी, एक पद जो सिविल अपील संख्या 6469/1998 में अपीलार्थी द्वारा दायर रिट आवेदन में उच्च न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश के आधार पर खाली रखा गया था, उसे श्री उमा कांत अग्रवाल को नियुक्त करके भरा गया है, जिनकी परिवीक्षा अवधि पूरी होने के बाद उसे नियमित कर दिया गया और वे न्यायिक कार्यों का निर्वहन कर रहे हैं। यह तर्क दिया गया कि विवादित चयन के बाद, एक और चयन प्रक्रिया शुरू हुई और नियुक्तियां करके इसे भी पूरा कर लिया गया है। इसके बाद चयन की एक और प्रक्रिया भी शुरू हो गई है यदि निर्णय के प्रभाव को भविष्यलक्षी नहीं बनाया गया तो उसमें जटिलताएं और देरी होगी।

विरोधी तर्कों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय के समक्ष विचारणीय यह प्रश्न यह है कि क्या नियम 8 (ii) और 15 (ii) संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के विरुद्ध हैं?

राजस्थान उच्च न्यायिक सेवा नियम, 1969 द्वारा बनाए गए हैं। राजस्थान के राज्यपाल ने राजस्थान उच्च न्यायालय के परामर्श से बनाये गये हैं और और नियम 3(बी) राजस्थान के लिए न्यायालय को उच्च न्यायालय के रूप में परिभाषित किया है।

नियमों के नियम 8(ii) और नियम 15(ii) के अनुसार राजस्थान उच्च न्यायिक सेवा में सीधी भर्ती उन अधिवक्ताओं से की जानी है, जिन्होंने राजस्थान उच्च न्यायालय या अधीनस्थ न्यायालयों में कम से कम 7 वर्ष तक वकालत की है। इन नियमों के प्रावधान के अनुसार राजस्थान राज्य में वकालत करने वाले अधिवक्ताओं के अलावा राज्य के बाहर वकालत करने वाले समस्त अधिवक्ताओं को इस पदों पर भर्तियों के लिए आवेदन करने का ही हकदार नहीं बनाती है, उनकी भर्ती करना दूर की बात है। नियम 20 के अनुसार योग्य व्यक्तियों से प्राप्त आवेदनों की जांच करनी होती है। नियम 20 के उप नियम (2) में राजस्थान उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता में न्यायाधीशों की एक समिति द्वारा योग्य उम्मीदवारों के साक्षात्कार लिये जाने का प्रावधान है। विचाराधीन पदों पर भर्ती के लिए किसी लिखित परीक्षा का प्रावधान नहीं है। नियमों के नियम 20 (3) के अनुसार समिति द्वारा साक्षात्कार के आधार पर चयन हेतु की गई सिफारिशों को संबंधित अभिलेख के साथ पूर्ण न्यायालय के समक्ष रखा जाना आवश्यक है। जो योग्यता के क्रम में सेवा में नियुक्ति के लिए उपयुक्त उम्मीदवार का अंतिम चयन करता है। नियम 21 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा उम्मीदवारों के नामों सूची राज्य के राज्यपाल को भेजकर की सेवा में नियुक्ति के लिए सिफारिश करनी होती है। बेहतर मूल्यांकन के लिए, नियमों के नियम 3 (बी), 8 और 15 का उल्लेख करना समीचीन होगा जो इस प्रकार हैं:-

“3(ख): "न्यायालय" से राजस्थान का उच्च न्यायालय अभिप्रेत है।

8: भर्ती का स्रोत-सेवा में भर्ती की जाएगी-

(1) राजस्थान न्यायिक सेवा के सदस्यों के बीच से पदोन्नति द्वारा या

(ii) ऐसे अधिवक्ताओं से सीधी भर्ती द्वारा जिन्होंने कम से कम सात वर्ष की अवधि के लिए न्यायालय या उसके अधीनस्थ न्यायालय में वकालत की हो। 15:

योग्यताएँ: - सेवा में सीधी भर्ती के लिए एक उम्मीदवार-

(1) भारत का नागरिक होना चाहिए, और

(ii) ऐसा अधिवक्ता होना चाहिए, जिसने न्यायालय या इसके अधीनस्थ न्यायालयों में कम से कम सात वर्ष की अवधि के लिए वकालत की हो।"

यहां राजस्थान न्यायिक सेवा नियम, 1955 (इसके बाद 'अधीनस्थ न्यायिक सेवा नियम' के रूप में संबोधित किया गया है) जो राजस्थान अधीनस्थ न्यायिक सेवा, यानी जमीनी स्तर पर मुन्सिफ की नियुक्ति से संबंधित है, के कुछ प्रावधानों का उल्लेख करना प्रासंगिक है। उक्त नियमों के नियम 11 के अनुसार एक मुन्सिफ की नियुक्ति के लिए योग्यता एक वकील के रूप में कम से कम तीन साल की प्रैक्टिस करने वाला व्यक्ति निर्धारित की गई है। जिसका स्पष्ट रूप से अर्थ होगा कि तीन साल की वकालत वाला वकील होना चाहिए, चाहे उसके वकालत का स्थान राजस्थान उच्च न्यायालय की अधिकारिता में है या उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर। आगे प्रावधान करता है कि एक उम्मीदवार को हिन्दी देवनागरी लिपि पूरा ज्ञान होना चाहिए। उचित मूल्यांकन के लिए उपर्युक्त नियम का उद्धरण देना उचित होगा।

जो इस प्रकार है:

"11. योग्यता: (1) कोई भी उम्मीदवार सेवा में भर्ती के लिए पात्र नहीं होगा।

जब तक कि:

(क) वह भारत में विधि द्वारा स्थापित किसी विश्वविद्यालय से विधि में स्नातक (पुरानी योजना के तहत दो साल का पाठ्यक्रम) या विधि स्नातक (व्यावसायिक) न हो और इस उद्देश्य के लिए इंग्लैंड या उत्तरी आयरलैंड के गवर्नर या बैरिस्टर या स्कॉटलैंड में अधिवक्ताओं के संकाय का सदस्य न हो।

(ख) वकील के रूप में कार्य करने का कम से कम तीन साल का अनुभव न हो।

(2) प्रत्येक उम्मीदवार को हिंदी देवनागरी लिपि का पूरा ज्ञान होना चाहिए।"

दोनों पक्षों की ओर से पेश होने वाले विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा इस न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय जे. पांडुरंगराव (उपर्युक्त) के मामले पर विश्वास किया गया, जिसमें यह देखा गया कि इस संबंध में सभी उच्च न्यायालयों की स्थिति समान है। वे सभी वकालत और न्याय प्रशासन की समान सर्वोच्च परंपराओं के लिए खड़े हैं और उन सभी में नामांकित अधिवक्ताओं को समान मानकों का पालन करने और न्याय प्रशासन के उद्देश्य की सेवा करने की समान भावना की सदस्यता लेने के लिए माना जाता है। उस मामले में, अपीलकर्ता जे. पांडुरंगराव एक ऐसे परिवार से थे, जो पिछली कई पीढ़ियों से आंध्र प्रदेश राज्य के गुंटूर जिले में बसा हुआ है, उनका जन्म, पालन-पोषण और शिक्षा उक्त जिले में हुई, उन्होंने स्नातक की उपाधि प्राप्त की। आंध्र प्रदेश राज्य के एक कॉलेज से कला की डिग्री, उसके बाद, उन्होंने नागपुर विश्वविद्यालय से एलएलबी की डिग्री ली और खुद को वर्ष 1954 में मैसूर उच्च न्यायालय के एक वकील के रूप में नामांकित किया और गुंटूर जिले की एक अदालत में वकालत शुरू की। जनवरी 1961 में, आंध्र प्रदेश लोक सेवा आयोग ने आंध्र प्रदेश राज्य में जिला मुंसिफ के पदों के लिए चयन के लिए आवेदन आमंत्रित किए, जिसके लिए उक्त अपीलकर्ता ने आवेदन किया था, लेकिन उसकी उम्मीदवारी इस आधार पर खारिज कर दी गई थी कि वह निर्धारित शर्तों को पूरा नहीं करता था। 17 दिसंबर, 1960 को प्रकाशित आयोग की अधिसूचना का पैराग्राफ 4 ए(1) के तहत आवेदन आमंत्रित किए गए थे, उक्त पैराग्राफ के अनुसार, जो आंध्र प्रदेश राज्य में अधीनस्थ न्यायपालिका में नियुक्ति के लिए आंध्र प्रदेश के राज्यपाल द्वारा बनाए गए आंध्र राज्य न्यायिक सेवा नियमों के नियम 12 (बी) पर आधारित था, जिसके अनुसार केवल वे वकील ही जिला मुंसिफ की सीधी भर्ती के लिए आवेदन कर सकते थे, जो आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय में एक वकील के रूप में वकालत कर रहे हैं और वास्तव में कम

से कम तीन साल से भारत में सिविल या आपराधिक क्षेत्राधिकार के न्यायालयों में वकालत कर रहे हैं। सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता ने केवल दूसरी शर्त पूरी की क्योंकि वह अधीनस्थ न्यायालय में वकालत कर रहा था लेकिन उसने पहली शर्त पूरी नहीं की, क्योंकि उसने कभी आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय में वकालत नहीं की थी। चूंकि अपीलकर्ता जे. पांडुरंगाराव की उम्मीदवारी खारिज कर दी गई थी, उन्होंने इस आधार पर नियम 12 (बी) और उपरोक्त अधिसूचना को रद्द करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत एक रिट आवेदन दायर करके इस न्यायालय का रुख किया कि ये संविधान के अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 16 के विरुद्ध होने से असंवैधानिक हैं।

नियम की वैधता पर उठाये गये प्रश्न पर विचार करते हुए, न्यायालय ने कहा कि जब अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने के आधार पर किसी नियम या वैधानिक प्रावधान की वैधता को चुनौती दी जाती है, तो दो परीक्षण पूरे होने पर इसकी वैधता बरकरार रखी जा सकती है। पहला परीक्षण यह है कि जिस वर्गीकरण पर इसे स्थापित किया गया है वह एक बोद्धगम्य अंतर पर आधारित होना चाहिए जो एक साथ समूहित व्यक्तियों या चीजों को समूह से बाहर छोड़े गए अन्य लोगों से अलग करता है; और दूसरा यह है कि विचाराधीन अंतर का नियम या वैधानिक प्रावधान द्वारा प्राप्त की जाने वाले उद्देश्य से उचित संबंध होना चाहिए। यह देखा गया कि नियम का उद्देश्य न्याय के निष्पक्ष और कुशल प्रशासन को सुरक्षित करने की दृष्टि से आंध्र प्रदेश राज्य में न्यायिक सेवा में उपयुक्त और उचित व्यक्तियों की भर्ती करना था। इसलिए इसमें कोई संदेह नहीं है कि संबंधित प्राधिकारी उक्त सेवा में नियुक्ति हेतु पात्रता हेतु योग्यताएं निर्धारित करने के लिए पूरी तरह से सक्षम है। स्थानीय कानूनों के ज्ञान के साथ-साथ क्षेत्रीय भाषा का ज्ञान और वकालत में पर्याप्त अनुभव को योग्यता के रूप में निर्धारित किया जा सकता है। जिसे आवेदकों को पद के लिए आवेदन करने से पहले पूरा करना होगा। उस मामले में, इस न्यायालय के समक्ष यह

तर्क दिया गया था कि आवेदक को स्थानीय कानूनों का ज्ञान होना आवश्यक करने के लिए नियम बनाए गए थे। हालाँकि इस न्यायालय ने पांडुरंगारो (उपर्युक्त) के मामले में स्पष्ट रूप से कहा है कि इस तरह के नियम की वैधता इस आधार पर कायम रखी जा सकती है कि इसके द्वारा प्राप्त किया जाने वाला उद्देश्य यह है कि आवेदक को स्थानीय कानूनों और क्षेत्रीय भाषा का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए। लेकिन ऐसा कहते समय, यह देखा गया कि इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उचित पाठ्यक्रम एक उपयुक्त परीक्षा निर्धारित करना हो सकता है जिसे उम्मीदवार को उत्तीर्ण करना चाहिए जिससे स्थानीय कानूनों के ज्ञान का परीक्षण किया जा सके।

पांडुरंगाराव (उपर्युक्त) के मामले में, इस न्यायालय ने पाया कि राज्य के रुख के अनुसार भी, नियमों को कायम नहीं रखा जा सकता है क्योंकि उद्देश्य यह है कि किसी व्यक्ति को स्थानीय कानूनों का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए, नियमों द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि आवश्यकता के अनुसार, केवल वही व्यक्ति आंध्र प्रदेश राज्य में अधीनस्थ न्यायिक सेवा के पद पर भर्ती के लिए आवेदन करने का योग्य है जो आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के वकील के रूप में वकालत कर रहा है और वास्तव में भारत के संपूर्ण क्षेत्र में सिविल या आपराधिक क्षेत्राधिकार के न्यायालयों में वकालत कर रहा है।

वर्तमान मामले में, नियम को प्रश्नांकित करने का विरोध इस आधार पर किया गया है कि वर्गीकरण, राजस्थान उच्च न्यायालय या उसके अधीनस्थ न्यायालयों में वकालत करने वाले अधिवक्ताओं के ही राजस्थान उच्च न्यायिक सेवा में के लिए पात्र होने के संबंध में विचार करने तक सीमित रखता है जिसमें उचित संबंध है। उन्हें स्थानीय कानूनों और क्षेत्रीय भाषा का ज्ञान है। प्रश्न यह है कि क्या वास्तव में इस आधार का अस्तित्व है या नहीं? राजस्थान न्यायिक सेवा नियमों का नियम 11 जो राजस्थान में अधीनस्थ न्यायिक सेवा में नियुक्ति से संबंधित है, यह बताता है कि

कोई भी वकील जिसने पूरे भारत में किसी भी अदालत में वकालत की है, वह मुंसिफ पद के लिए पात्र है। मुंसिफ पद के लिए स्थानीय कानून और क्षेत्रीय भाषा का ज्ञान बहुत अधिक आवश्यक है। उक्त नियम 11 में आगे कहा गया है कि उम्मीदवार को हिन्दी देवनागरी लिपि का संपूर्ण ज्ञान होना चाहिए। इस प्रकार मुंसिफ पद पर भर्ती के लिए यह आवश्यक नहीं है कि व्यक्ति को स्थानीय कानूनों और क्षेत्रीय भाषा का ज्ञान हो। यदि अधीनस्थ न्यायिक सेवा में नियुक्ति के लिए न तो स्थानीय कानूनों और न ही क्षेत्रीय भाषा के ज्ञान की कोई आवश्यकता है तो हम वास्तव में यह समझने में असफल हैं कि उसी राज्य में, अर्थात् राजस्थान राज्य में उच्च न्यायिक सेवा के लिए इसकी आवश्यकता कैसे है। इस प्रकार, हम पाते हैं कि प्रतिवादी नंबर 2 द्वारा लिया गया आधार, कि इस तरह के नियम बनाने का उद्देश्य संविधान के अनुच्छेद 14 की कसौटी पर खरा उतरने के लिए स्थानीय कानून और क्षेत्रीय भाषा का ज्ञान आवश्यक है, तर्क संगत नहीं है।

भारतीय संविधान मूल रूप से संघीय है और यह संघीय प्रणाली की पारंपरिक विशेषताओं, अर्थात् संविधान की सर्वोच्चता, संघ और राज्यों के बीच शक्ति का विभाजन और एक स्वतंत्र न्यायपालिका के अस्तित्व से परिलक्षित होती है। कश्मीर से कन्याकुमारी तक, देश एक है और ऐसा कोई स्पष्ट अंतर नहीं है जो राजस्थान राज्य के अंदर और भारत में राजस्थान के बाहर क्षेत्र में वकालत करने वाले अधिवक्ताओं को अलग करता हो। पांडुरंगाराव (उपर्युक्त) के मामले में, इस न्यायालय ने पाया कि पूरे देश में पाठ्यक्रम में, सामान्य कानूनों के अलावा महत्वपूर्ण स्थानीय कानूनों का अध्ययन आम तौर पर शामिल किया जाता है, जो महत्वपूर्ण स्थानीय कानूनों के ज्ञान की आवश्यकता को पूरा करेगा। उसी मामले में, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, यह देखा गया कि स्थानीय कानूनों के ज्ञान के लिए, एक उपयुक्त परीक्षा आयोजित की जा सकती है जिसे उम्मीदवार को उत्तीर्ण करना होगा। इस प्रकार न्यायालय ने उस

मामले में पृष्ठ 717 पर टिप्पणी की जो इस प्रकार है:-

"यह स्पष्ट नहीं है कि विवादित नियम स्थानीय कानूनों के ज्ञान की कथित आवश्यकता को प्रभावी ढंग से पूरा कर सकता है। यदि उद्देश्य प्राप्त करने का इरादा यह है कि आवेदक को स्थानीय कानूनों का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए, तो उसे अपनाने के लिए सामान्य और उचित पाठ्यक्रम होना चाहिए, इसकी लिए एक उपयुक्त परीक्षा निर्धारित करना है, जिसे उम्मीदवारों को उत्तीर्ण करना चाहिए, या कोई अन्य प्रभावी तरीका अपनाना चाहिए। यह दर्शित करने के लिए हमारे सामने कोई सामग्री नहीं रखी गई है कि स्थानीय कानूनों के ज्ञान के बारे में कथित आवश्यकता नियम की वैधता के समर्थन में सुझाए गए दो आधारों पर पूरा किया जा सकता है। इसके अलावा, पूरे देश में प्रचलित सामान्य कानूनों का अध्ययन और महत्वपूर्ण स्थानीय कानूनों का अध्ययन आम तौर पर कानून की डिग्री के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम में शामिल किया जाता है और एक कानून की डिग्री प्राप्त करना एक वकील के रूप में नामांकित होने के लिए एक व्यक्ति को अधिकार देता है, महत्वपूर्ण स्थानीय कानूनों के ज्ञान की आवश्यकता को पूरा करता है"।

मामले की जांच दूसरे दृष्टिकोण से की जा सकती है, क्योंकि एक वकील को किसी भी अदालत में वकालत करने के लिए कानून के पहले सिद्धांतों से अच्छी तरह वाकिफ होना आवश्यक है और यहां तक कि स्थानीय कानून भी पहले सिद्धांतों पर आधारित होते हैं और आवश्यकता को लिखित परीक्षा निर्धारित करके पूरा किया जा सकता है। स्थानीय कानूनों के साथ-साथ या जिन मामलों में अकेले साक्षात्कार लेने की प्रथा है, वहां स्थानीय कानूनों के संबंध में भी प्रश्न पूछकर किसी व्यक्ति के स्थानीय

कानून के संबंध में ज्ञान का परीक्षण किया जा सकता है। सिविल अपील संख्या 6469/1998 में अपीलकर्ता का साक्षात्कार उसके मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता में उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की समिति द्वारा किया गया था, जिसने उसे राजस्थान में उच्च न्यायिक सेवा के पद पर नियुक्ति के लिए उपयुक्त पाया और उसके पक्ष में सिफारिशें कीं, लेकिन उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायालय द्वारा उसकी उम्मीदवारी रद्द कर दी गई क्योंकि वह नियमों के तहत पात्र नहीं था। इस प्रकार, हम पाते हैं कि संविधान के अनुच्छेद 14 के उल्लंघन के आधार पर नियम की वैधता को बनाए रखने के लिए जे. पांडुरंगाराव के मामले में बताये गए दो परीक्षणों में से कोई भी उपलब्ध नहीं है क्योंकि यह दर्शित नहीं किया गया है कि जिस वर्गीकरण पर नियम बनाए गए थे, वे एक बोद्धगम्य अंतर पर आधारित हैं और इनका बनाये जाने के उद्देश्य के साथ कोई उचित संबंध है।

पांडुरंगाराव (उपर्युक्त) के मामले में लिया गया दृष्टिकोण इस न्यायालय की पिछली संविधान पीठ द्वारा रामेश्वर दयाल बनाम पंजाब राज्य और अन्य ए आई आर (1961) सुप्रीम कोर्ट 816 के मामले पर आधारित है। जिसमें पांच व्यक्तियों की नियुक्ति की गई थी। पंजाब उच्च न्यायिक सेवा को पंजाब उच्च न्यायालय के समक्ष इस आधार पर रिट आवेदन दायर करके चुनौती दी गई थी कि इन व्यक्तियों ने पंजाब उच्च न्यायालय में सात साल की अवधि के लिए वकालत नहीं की थी, लेकिन सात साल की अवधि में से कुछ वर्षों के लिए उन्होंने वकालत की थी। देश के विभाजन से पहले लाहौर उच्च न्यायालय में और विभाजन के बाद पंजाब उच्च न्यायालय में वकालत की थी। रिट आवेदन इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि सात साल की अवधि की गणना के लिए, दोनों उच्च न्यायालयों में वकालत की अवधि को संविधान के अनुच्छेद 233 के प्रयोजन के लिए गिना जाएगा और उक्त निर्णय के खिलाफ, जब इस न्यायालय में अपील लाई गई तो उच्च न्यायालय के फैसले को

बरकरार रखा गया और यह निर्धारित किया गया कि दोनों उच्च न्यायालयों में अभ्यास की अवधि को बार में एक व्यक्ति के सात साल की गणना के लिए गिना जाएगा।

प्रतिवादी नंबर 2 की ओर से श्री राव ने कहा कि चूंकि नियम पिछले 32 वर्षों से अधिक समय से लागू हैं, इन सभी वर्षों में राजस्थान उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ और पूर्ण पीठ के फैसलों द्वारा निर्धारित विधि को उलट कर अस्थिर नहीं किया जाना चाहिए। अपने कथन के समर्थन में, विद्वान वकील ने इस न्यायालय के साथ-साथ प्रिवी काउंसिल के विभिन्न निर्णयों पर विश्वास किया। कलेक्टर ऑफ सेंट्रल एक्साइज, मद्रास बनाम मैसर्स मानक मोटर उत्पाद और अन्य (1989) 2 एस सी सी 303 में यह निर्धारित किया गया है कि न्यायालय की लंबे समय से चली आ रही प्रथा में बाधित नहीं किया जाना चाहिए। कट्टाइट वलप्पिल पथुम्मा और अन्य बनाम तालुक भूमि बोर्ड और अन्य ए आई आर (1997) एस सी. 1115 के मामले में यह देखा गया है कि पुराने निर्णय में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि यह स्पष्ट रूप से गलत या अनुचित न पाया जाए। आंध्र प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम एम. गुरिवि रेड्डी और अन्य (1992) 4 एस सी सी 72 के मामले में, यह निर्णय दिया गया कि सुप्रीम कोर्ट ने अपने अंतरिम आदेशों द्वारा राज्य सरकार को एक योजना पर कार्य करने की अनुमति दी है और ऑपरेटरों को आवेदन करने का अवसर भी दिया है। यदि वे व्यथित महसूस करते हैं तो सरकार इस योजना में संशोधन कर सकती है और योजना ऑपरेटरों की आपत्ति के बिना चालू रह सकती है, ऐसे में इसके द्वारा पारित अंतरिम आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। इंदर मोहन लाल बनाम रमेश खन्ना (1984)4 एस सी सी 1 के मामले में, यह निर्धारित किया गया है कि जहां उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून लंबे समय तक किसी क्षेत्र में प्रचलित है और लेनदेन इस प्रकार निर्धारित कानून के अनुसार पूरा होता है, तो यह न्यायालय सामान्यतः इसमें हस्तक्षेप नहीं करेगा। थम्मा वेंकट सुब्बम्मा (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि अनाम

थम्मा रत्तम्मा और अन्य (1987)3 एस सी सी 294 के मामले में यह देखा गया है कि उच्च न्यायालयों के निर्णयों की एक लंबी श्रृंखला है जो समान रूप से निर्धारित करती है कि सहदायिक संपत्ति में अपने अविभाजित हित के एक सहदायिक द्वारा किसी अजनबी को या उसके रिश्तेदार को अन्य सहदायिकों की सहमति के बिना उपहार में दिया गया है तो ऐसा उपहार शून्य है। चूंकि विधि की यह स्थिति दशकों से कायम है, इसलिए न्यायालय को बाध्यकारी परिस्थितियों को छोड़कर ऐसे कानून को रद्द नहीं करना चाहिए। सहायक जिला रजिस्ट्रार, सहकारी हाउसिंग सोसाइटी लिमिटेड बनाम विक्रमभाई रतिलाल दलाल और अन्य (1987) पूरक एस सी सी 27 के मामले में, गुजरात सहकारी सोसायटी अधिनियम, 1961 की धारा 96(1)(सी) को रद्द कर दिया गया था। उच्च न्यायालय द्वारा और इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण में हस्तक्षेप करने का कोई औचित्य नहीं पाते हुए कहा कि चूंकि निर्णय सोलह वर्षों तक लागू रहा, इसलिए किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। ऑटारियो के अटॉर्नी-जनरल और अन्य बनाम कनाडा टेम्परेंस फेडरेशन और अन्य ए आई आर (1946) प्रिवी कौंसिल 88, अंबिका प्रसाद मिश्रा बनाम यूपी राज्य और अन्य (1980)3 एस सी सी 719 और महेश कुमार सहारिया बनाम नागालैंड राज्य और अन्य (1997) 8 एस सी सी 176 के मामले में न्यायालयों ने इस आधार पर अपने स्वयं के निर्णयों की शुद्धता पर पुनर्विचार करने से इनकार कर दिया कि कई मामलों में इसका पालन किया गया है।

इन निर्णयों के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि ये उत्तरदाताओं का अधिक समर्थन नहीं करते हैं, बल्कि उनके तर्कों के अधिक प्रतिकूल हैं। यह देखा गया है कि पुराने निर्णयों में निर्धारित कानून में केवल इस आधार पर हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए कि अलग-अलग दृष्टिकोण संभव है, लेकिन यदि निर्णय स्पष्ट रूप से गलत या अनुचित है तो न्यायालय का हस्तक्षेप करना उचित होगा। वर्तमान मामले में, हमने

स्पष्ट रूप से माना है कि नियम संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन करते हैं, क्योंकि राजस्थान उच्च न्यायालय की डिवीजन पीठ और पूर्ण पीठ के फैसले स्पष्ट रूप से गलत हैं और यदि उनमें निर्धारित कानून को मंजूरी दी जाती है तो राजस्थान राज्य को छोड़कर देश भर की सभी न्यायालयों में वकालत करने वाले अधिवक्ताओं के साथ अन्याय होगा। इस प्रकार, हमारे पास यह मानने के अलावा कोई विकल्प नहीं है कि नियम 8(ii) और 15(ii) संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं और इन्हें रद्द किया जा जाना चाहिए।

श्री राव का अंतिम निवेदन यह है कि यदि नियमों को अवैध माना जाता है, तो निर्णय को 32 वर्षों की अवधि के लिए, जब नियम लागू रहे इसके तहत असंख्य नियुक्तियाँ की गई हैं उन्हें बाधित नहीं की जानी चाहिए और बहुत सारी जटिलताओं से बचने के लिए भविष्यलक्षी प्रभाव से लागू किया जाना चाहिए। अब यह भलीभांति विनिश्चित हो गया है कि न्यायालय न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के अलावा स्थापित पदों की अस्थिरता और प्रशासनिक अव्यवस्था को रोकने के लिए अपने द्वारा निर्धारित विधि को भविष्यलक्षी प्रभाव से लागू कर सकती हैं। आईसी गोलक नाथ और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य (1967) 2 एस सी आर 762 के मामले में यह प्रश्न उत्पन्न हुआ था कि क्या उस मामले में निर्णय भविष्यलक्षी या भूतलक्षी प्रभाव में होना चाहिए और न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार किया कि 1950 और 1967 के बीच संविधान में बीस संशोधन किए गए थे और विभिन्न राज्यों की विधानसभाओं ने देश में कृषि क्रांति लाने वाले कानून बनाए थे जो श्री शंकरी प्रसाद सिंह देव बनाम भारत संघ और बिहार राज्य(1952) एस सी आर 89 और सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य (1965) 1 एस सी आर 933 के मामले में लिए गए निर्णयों की शुद्धता के आधार पर बनाए गए थे। अर्थात्, संसद के पास मौलिक अधिकारों में संशोधन करने की शक्तियाँ थीं और सम्पदा के संबंध में अधिनियम न्यायिक जांच से

बाहर थे क्योंकि उन्होंने उक्त अधिकारों का उल्लंघन किया था उक्त निर्णय के कारण उत्पन्न होने वाली तत्कालीन असाधारण स्थिति से निपटने के लिए न्यायालय ने महसूस किया कि उसे कुछ ऐसे सिद्धांत विकसित करने चाहिए जिसका मूल तर्क और उदाहरणों में हों ताकि अतीत को संरक्षित किया जा सके और भविष्य को संरक्षित किया जा सके। उस मामले में यह निर्धारित किया गया था कि संभावित ओवररूलिंग का सिद्धांत केवल संविधान के तहत उत्पन्न होने वाले मामलों में ही लागू किया जा सकता है और इसे केवल इस न्यायालय द्वारा अपने विवेक से लागू किया जा सकता है। जिसे पहले कारण या मामले के न्याय के अनुसार ढाला जा सकता है।

उपर्युक्त निर्णय में दिए गए मत को स्वीकार करते हुए इस न्यायालय ने सिद्धांत को सामान्य कानूनों की व्याख्या तक भी बढ़ा दिया है। वामन राव और अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य (1981) 2 एस सी सी 362, आत्म प्रकाश बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य (1986) 2 एस सी सी 249, उड़ीसा सीमेंट लिमिटेड बनाम उड़ीसा राज्य एवं अन्य (1991) पूरक 1 एस सी सी 430, भारत संघ बनाम मोहम्मद रमज़ान खान (1991) 1 एस सी सी 588 और प्रबंध निदेशक, ईसीआईएल, हैदराबाद और अन्य बनाम बी. करुणाकर और अन्य (1993) 4 एस सी सी 727 के सामान्य मामले में भी भविष्यलक्षी ओवररूलिंग के मैकेनिज्म का सहारा लिया गया था। हम यह उपयुक्तता पाते हैं कि इस मामले में विनिश्चित विधि का प्रभाव भविष्यलक्षी घाषित किया जाता है।

सिविल अपील संख्या 6469/1998 में अपीलकर्ता, जिसे समिति ने योग्य पाया, साक्षात्कार में उपस्थित हुआ, उसे फिट पाया गया और उच्च न्यायिक सेवा में नियुक्ति के लिए सिफारिश की गई, लेकिन नियुक्त नहीं किया जा सका क्योंकि पूर्ण न्यायालय ने पाया कि वह पात्र नहीं हैं और उच्च न्यायालय के अंतरिम आदेश के आधार पर उनके लिए एक पद आरक्षित रखा गया था, लेकिन रिट आवेदन को खारिज करने के

मद्देनजर, उक्त पद श्री उमा कांत अग्रवाल-प्रतिवादी संख्या 13 की नियुक्त से भरा गया है। मेरा मानना है कि उच्च न्यायालय को मौजूदा रिक्तियों में से एक के खिलाफ राजस्थान उच्च न्यायिक सेवा में नियुक्ति के लिए राज्यपाल को उनके नाम की सिफारिश करने का निर्देश देना न्यासंगत और युक्तयुक्त होगा क्योंकि उच्च न्यायालय द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया के अनुसार पद अभी भी खाली हैं।

जहां तक सिविल अपील संख्या 2411/1999 में अपीलकर्ता का संबंध है, सिविल अपील संख्या 3021/97 सुषमा सूरी बनाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार और अन्य में इस न्यायालय के निर्णय को उच्च न्यायालय ने ध्यान में रखा है। इसलिए उनके पक्ष में राहत देने से इनकार कर दिया। अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वकील उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए उपरोक्त निर्णय में कोई त्रुटि नहीं बता सके। इसलिए उन्हें कोई राहत देना संभव नहीं है। हालाँकि, हम यह देख सकते हैं कि उच्च न्यायालय भविष्य में राजस्थान उच्च न्यायिक सेवा में सीधी भर्ती के लिए इस अपीलकर्ता जैसे अभ्यर्थियों के आवेदनों पर कार्रवाई करेगा क्योंकि अपीलार्थी की नियुक्ति के लिए योग्य पाया गया है

सिविल अपील संख्या 722/1999 में चुनौती का एकमात्र आधार अपीलकर्ता के खिलाफ उच्च न्यायालय द्वारा पारित सख्ती और जुर्माना लगाना है। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, हमारा विचार है कि अपीलकर्ता के खिलाफ की गई ऐसी टिप्पणियों को आक्षेपित निर्णय से हटाना और जुर्माना देने के आदेश को रद्द करना न्याय संगत और युक्तयुक्त होगा।

परिणामस्वरूप, सिविल अपील संख्या 6469/1998 की अनुमति दी जाती है, नियमों को बरकरार रखते हुए उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय को अपास्त किया जाता है और नियम 8 (ii) और 15 (ii) को संविधान के अनुच्छेद 14 व 16 का

उल्लंघन करने से निरस्त किया जाता है। यह स्पष्ट किया जाता है कि यह निर्णय उन नियमों, जो यहां ऊपर अमान्य पाए गए हैं, के तहत इस तिथि से पहले की गई किसी भी नियुक्ति को प्रभावित नहीं करेगा। उच्च न्यायालय को सलाह दी जाएगी कि वह इस निर्णय के अनुसार चयन की प्रक्रिया, जो पहले ही शुरू हो चुकी है, नए सिरे से शुरू करे और अब राजस्थान उच्च न्यायिक सेवा में नियुक्ति के लिए मौजूदा रिक्तियों में से एक के विरुद्ध अपीलार्थी- गंगा राम मूलचंदानी के नाम की सिफारिश राजस्थान के राज्यपाल को करेगा। सिविल अपील संख्या 722/1999 की अनुमति दी जाती है, अपीलकर्ता के खिलाफ आक्षेपित फैसले में पारित निर्देश हटाये जाते हैं और उस पर जुर्माना लगाने का आदेश को निरस्त किया जाता है। सिविल अपील संख्या 2411/1999 उपर्युक्त टिप्पणियों के अधीन खारिज की जाती है। इन परिस्थितियों में, खर्च के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी- पवन कुमार काला (आर जे 0574) आर जे एस, अपर जिला एवं सेशन न्यायाधीश, संख्या 6 बीकानेर द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकारों को उनकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए उसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा और निस्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।